भगवती स्वाहाका उपाख्यान

नारायण महाभाग नारायण महाप्रभो।
रूपेणैव गुणेनैव यशसा तेजसा त्विषा॥ १
त्वमेव ज्ञानिनां श्रेष्ठः सिद्धानां योगिनां मुने।
तपस्विनां मुनीनां च परो वेदविदांवर॥ २
महालक्ष्म्या उपाख्यानं विज्ञातं महदद्भुतम्।
अन्यत्किञ्चिदुपाख्यानं निगूढं वद साम्प्रतम्॥ ३
अतीव गोपनीयं यदुपयुक्तं च सर्वतः।
अप्रकाश्यं पुराणेषु वेदोक्तं धर्मसंयुतम्॥ ४

नारदजी बोले—हे नारायण! हे महाभाग! हे महाप्रभो! आप रूप, गुण, यश, तेज और कान्तिमें साक्षात् नारायण ही हैं॥ १॥

हे मुने! हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! आप ज्ञानियों, सिद्धों, योगियों, तपस्वियों और मुनियोंमें परम श्रेष्ठ हैं। मैंने आपसे महालक्ष्मीका अत्यन्त अद्भुत उपाख्यान जान लिया, अब आप मुझे कोई दूसरा उपाख्यान बतलाइये; जो रहस्यमय, अत्यन्त गोपनीय, सबके लिये उपयोगी, पुराणोंमें अप्रकाशित, धर्मयुक्त तथा वेदप्रतिपादित हो॥ २—४॥

श्रीनारायण उवाच

नानाप्रकारमाख्यानमप्रकाश्यं पुराणतः।
श्रुतं कतिविधं गूढमास्ते ब्रह्मन् सुदुर्लभम्॥ ५

तेषु यत्सारभूतं च श्रोतुं किं वा त्वमिच्छसि।
तन्मे ब्रूहि महाभाग पश्चाद्वक्ष्यामि तत्पुनः॥ ६

नारद उवाच

स्वाहा देवी हविर्दाने प्रशस्ता सर्वकर्मसु।
पितृदाने स्वधा शस्ता दक्षिणा सर्वतो वरा॥ ७

एतासां चरितं जन्मफलं प्राधान्यमेव च।
श्रोतुमिच्छामि त्वद्वक्त्राद्वद वेदविदांवर॥ ८

सूत उवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिसत्तमः।
कथां कथितुमारेभे पुराणोक्तां पुरातनीम्॥ ९

श्रीनारायण उवाच

सृष्टेः प्रथमतो देवाः स्वाहारार्थं ययुः पुरा।
ब्रह्मलोकं ब्रह्मसभामाजग्मुः सुमनोहराम्॥ १०

गत्वा निवेदनं चक्रुराहारहेतुकं मुने।
ब्रह्मा श्रुत्वा प्रतिज्ञाय निषेवे श्रीहरिं परम्॥ ११

नारद उवाच

यज्ञरूपो हि भगवान् कलया च बभूव ह।
यज्ञे यद्यद्धविर्दानं दत्तं तेभ्यश्च ब्राह्मणैः॥ १२

श्रीनारायण उवाच

हविर्ददति विप्राश्च भक्त्या च क्षत्रियादयः।
सुरा नैव प्राप्नुवन्ति तद्दानं मुनिपुङ्गव॥ १३

देवा विषण्णास्ते सर्वे तत्सभां च ययुः पुनः।
गत्वा निवेदनं चक्रुराहाराभावहेतुकम्॥ १४

ब्रह्मा श्रुत्वा तु ध्यानेन श्रीकृष्णं शरणं ययौ।
पूजाञ्चकार प्रकृतेर्ध्यानेनैव तदाज्ञया॥ १५

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मन्! ऐसे अनेकविध आख्यान हैं, जो पुराणोंमें वर्णित नहीं हैं। कई प्रकारके आख्यान सुने भी गये हैं, जो अत्यन्त दुर्लभ तथा गूढ़ हैं, उनमें किस सारभूत आख्यानको आप सुनना चाहते हैं? हे महाभाग! आप पहले मुझसे उसे बताइये, तब मैं उसका वर्णन करूँगा॥ ५-६॥

नारदजी बोले—सभी धार्मिक कर्मोंमें हवि-प्रदानके समय स्वाहादेवी और श्राद्धकर्ममें स्वधादेवी प्रशस्त मानी गयी हैं। यज्ञ आदि कर्मोंमें दक्षिणादेवी सर्वश्रेष्ठ हैं। हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! मैं आपके मुखसे इन्हीं देवियोंके चरित्र, अवतारग्रहणका प्रयोजन तथा महत्त्व सुनना चाहता हूँ, उसे बताइये॥ ७-८॥

सूतजी बोले—नारदजीकी बात सुनकर मुनिवर नारायणने हँसकर पुराणप्रतिपादित प्राचीन कथा कहनी आरम्भ की॥ ९॥

श्रीनारायण बोले—हे मुने! प्राचीन समयमें सृष्टिके प्रारम्भिक कालमें देवतागण अपने आहारके लिये ब्रह्मलोक गये। वहाँपर वे ब्रह्माजीकी मनोहर सभामें आये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपने आहारके लिये ब्रह्माजीसे प्रार्थना की। उनकी बात सुनकर ब्रह्माजीने उनके लिये आहारकी प्रतिज्ञा करके परमेश्वर श्रीहरिकी आराधना की॥ १०-११॥

नारदजी बोले—भगवान् श्रीहरि अपनी कलासे यज्ञके रूपमें प्रकट हो चुके थे। तब यज्ञमें ब्राह्मणोंके द्वारा उन देवताओंको जो-जो हव्य प्रदान किया जाता था, क्या उससे उनकी तृप्ति नहीं होती थी?॥ १२॥

श्रीनारायण बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! ब्राह्मण और क्षत्रिय आदि वर्ण देवताओंके निमित्त भक्तिपूर्वक जो हविदान करते थे, उस प्रदत्त हविको देवगण नहीं प्राप्त कर पाते थे। उसीसे वे सभी देवता दुःखी होकर ब्रह्मसभामें गये और वहाँ जाकर उन्होंने आहारके अभावकी बात बतायी॥ १३-१४॥

देवताओंकी यह प्रार्थना सुनकर ब्रह्माजीने ध्यान करके श्रीकृष्णकी शरण ग्रहण की। तब उन श्रीकृष्णके आदेशानुसार ब्रह्माजी ध्यानके साथ मूलप्रकृति भगवतीकी आराधना करने लगे। इसके फलस्वरूप सर्वशक्ति-स्वरूपिणी स्वाहादेवी भगवती मूलप्रकृतिकी कलासे

प्रकृतेः कलया चैव सर्वशक्तिस्वरूपिणी।
अतीव सुन्दरी श्यामा रमणीया मनोहरा॥ १६

ईषद्धास्यप्रसन्नास्या भक्तानुग्रहकातरा।
उवाचेति विधेरग्रे पद्मयोने वरं वृणु॥ १७

विधिस्तद्वचनं श्रुत्वा सम्भ्रमात्समुवाच ताम्।

प्रजापतिरुवाच

त्वमग्नेर्दाहिका शक्तिर्भव यातीव सुन्दरी॥ १८

दग्धुं न शक्तः प्रकृतीर्हुताशश्च त्वया विना।
त्वन्नामोच्चार्य मन्त्रान्ते यो दास्यति हविर्नरः॥ १९

सुरेभ्यस्तत्प्राप्नुवन्ति सुराः सानन्दपूर्वकम्।
अग्नेः सम्पत्स्वरूपा च श्रीरूपा सा गृहेश्वरी॥ २०

देवानां पूजिता शश्वन्नरादीनां भवाम्बिके।
ब्रह्मणश्च वचः श्रुत्वा सा विषण्णा बभूव ह॥ २१

तमुवाच ततो देवी स्वाभिप्रायं स्वयम्भुवम्।

स्वाहोवाच

अहं कृष्णं भजिष्यामि तपसा सुचिरेण च॥ २२

ब्रह्मंस्तदन्यं यत्किञ्चित्स्वप्नवद् भ्रममेव च।
विधाता जगतस्त्वं च शम्भुर्मृत्युञ्जयो विभुः॥ २३

बिभर्ति शेषो विश्वं च धर्मः साक्षी च धर्मिणाम्।
सर्वाद्यपूज्यो देवानां गणेषु च गणेश्वरः॥ २४

प्रकृतिः सर्वसम्पूज्या यत्प्रसादात्पुराभवत्।
ऋषयो मुनयश्चैव पूजिता यन्निषेवया॥ २५

तत्पादपद्मं नियतं भावेन चिन्तयाम्यहम्।
पद्मास्या पाद्ममित्युक्त्वा पद्मनाभानुसारतः॥ २६

प्रकट हो गयीं। उनका श्रीविग्रह अत्यन्त सुन्दर, लावण्यमय, रमणीय तथा मनोहर था, उनका मुखमण्डल मन्द-मन्द मुसकान तथा प्रसन्नतासे युक्त था, वे अपने भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये आतुर-सी प्रतीत हो रही थीं, ऐसे स्वरूपवाली उन भगवती स्वाहाने ब्रह्माके सम्मुख उपस्थित होकर कहा—हे पद्मयोने! वर माँगो। उनका वचन सुनकर ब्रह्माजी आदरपूर्वक उन भगवतीसे कहने लगे— ॥ १५—१७½ ॥

प्रजापति बोले—[हे देवि!] आप अग्निकी परम सुन्दर दाहिकाशक्ति हो जाइये; क्योंकि आपके बिना अग्निदेव आहुतियोंको भस्म करनेमें समर्थ नहीं हैं। जो मनुष्य मन्त्रके अन्तमें आपके नामका उच्चारण करके देवताओंको हवि प्रदान करेगा, उसे देवगण प्रेमपूर्वक ग्रहण करेंगे। हे अम्बिके! आप अग्निदेवकी सम्पत्स्वरूपिणी तथा श्रीरूपिणी गृहस्वामिनी बन जाइये, देवता तथा मनुष्य आदिके लिये आप नित्य पूजनीय होवें॥ १८—२०½ ॥

ब्रह्माजीकी बात सुनकर वे भगवती स्वाहा उदास हो गयीं। उसके बाद उन्होंने ब्रह्माजीसे अपना अभिप्राय व्यक्त कर दिया॥ २१½ ॥

स्वाहा बोलीं—हे ब्रह्मन्! मैं दीर्घकालतक तपस्या करके भगवान् श्रीकृष्णकी आराधना करूँगी; क्योंकि उनके अतिरिक्त जो कुछ भी है, वह सब स्वप्नकी भाँति केवल भ्रम है॥ २२½ ॥

जिनके अनुग्रहसे आप जगत्का विधान करते हैं, भगवान् शिवने मृत्युपर विजय प्राप्त की है, शेषनाग सम्पूर्ण विश्वको धारण करते हैं, धर्मराज सभी धर्मनिष्ठ प्राणियोंके साक्षी बने हैं, गणेश्वर सभी देवगणोंमें सबसे पहले पूजे जाते हैं, पूर्वकालमें भगवती मूलप्रकृति सबके द्वारा पूजित हुईं और जिनकी उपासनाके प्रभावसे ऋषि तथा मुनिगण पूजित हुए हैं, मैं उन परमेश्वर श्रीकृष्णके चरण-कमलका संयत होकर प्रेमपूर्वक निरन्तर ध्यान करती हूँ॥ २३—२५½ ॥

ब्रह्माजीसे ऐसा कहकर कमलके समान मुखवाली स्वाहादेवी भगवान् विष्णुकी आज्ञाके अनुसार तपस्या करनेके लिये चली गयीं और उन पद्मजा स्वाहाने

जगाम तपसे देवी ध्यात्वा कृष्णं निरामयम्।
तपस्तेपे वर्षलक्षमेकपादेन पद्मजा॥ २७

तदा ददर्श श्रीकृष्णं निर्गुणं प्रकृतेः परम्।
अतीव कमनीयं च रूपं दृष्ट्वा च रूपिणी॥ २८

मूर्च्छां सम्प्राप कालेन कामेशस्य च कामुकी।
विज्ञाय तदभिप्रायं सर्वज्ञस्तामुवाच ह॥ २९

समुत्थाप्य च तां क्रोडे क्षीणाङ्गीं तपसा चिरम्।

श्रीभगवानुवाच

वाराहे वै त्वमंशेन मम पत्नी भविष्यसि॥ ३०

नाम्ना नाग्नजिती कन्या कान्ते नग्नजितस्य च।
अधुनाग्नेर्दाहिका त्वं भव पत्नी च भामिनी॥ ३१

मन्त्राङ्गरूपा पूज्या च मत्प्रसादाद् भविष्यसि।
वह्निस्त्वां भक्तिभावेन सम्पूज्य च गृहेश्वरीम्॥ ३२

रमिष्यति त्वया सार्धं रामया रमणीयया।
इत्युक्त्वान्तर्दधे देवो देवीं सम्भाष्य नारद॥ ३३

तत्राजगाम सन्त्रस्तो वह्निर्ब्रह्मनिदेशतः।
सामवेदोक्तध्यानेन ध्यात्वा तां जगदम्बिकाम्॥ ३४

सम्पूज्य परितुष्टाव पाणिं जग्राह मन्त्रतः।
तदा दिव्यं वर्षशतं स रेमे रामया सह॥ ३५

अतीव निर्जने देशे सम्भोगसुखदे सदा।
बभूव गर्भस्तस्यां च हुताशस्य च तेजसा॥ ३६

तं दधार च सा देवी दिव्यं द्वादशवत्सरम्।
ततः सुषाव पुत्रांश्च रमणीयान्मनोहरान्॥ ३७
दक्षिणाग्निगार्हपत्याहवनीयान् क्रमेण च।

निर्विकार श्रीकृष्णका ध्यान करके एक पैरपर खड़े होकर एक लाख वर्षतक तप किया। तत्पश्चात् उन्हें अप्राकृत निर्गुण भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन हुए। भगवान् श्रीकृष्णका अत्यन्त मनोहर रूप देखकर ही वे रूपवती भगवती स्वाहा मूर्च्छित हो गयीं; क्योंकि उन कामुकी देवीने दीर्घकालके अनन्तर उन कामेश्वर श्रीकृष्णको देखा था॥ २६—२८½॥

भगवती स्वाहाका अभिप्राय समझकर सर्वज्ञ भगवान् श्रीकृष्ण दीर्घकालतक तपस्याके कारण अत्यन्त क्षीण देहवाली उन देवीको गोदमें बैठाकर उनसे कहने लगे॥ २९½॥

श्रीभगवान् बोले—हे कान्ते! तुम अंशरूपसे वाराहकल्पमें मेरी भार्या बनोगी, उस समय तुम नग्नजित्की पुत्रीके रूपमें उत्पन्न होकर नाग्नजिती नामसे विख्यात होओगी। इस समय तुम दाहिका-शक्तिके रूपमें अग्निदेवकी मनोहर पत्नी बनो। मेरे अनुग्रहसे तुम मन्त्रोंकी अंगस्वरूपिणी बनकर सबसे पूजित होओगी। अग्निदेव तुम्हें गृहस्वामिनी बनाकर भक्तिभावके साथ तुम्हारी पूजा करेंगे और वे परम रमणीया भार्याके रूपमें तुम्हारे साथ रमण करेंगे॥ ३०—३२½॥

हे नारद! देवी स्वाहासे ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये। इसके बाद ब्रह्माज्ञासे अत्यन्त भयभीत अग्निदेव वहाँ आये। उन्होंने सामवेदमें कही गयी ध्यानविधिसे उन भगवती जगदम्बिकाका ध्यान करके तथा विधिपूर्वक पूजन करके उन्हें परम प्रसन्न किया तथा मन्त्रोच्चारपूर्वक उनका पाणिग्रहण किया॥ ३३-३४½॥

तत्पश्चात् वे विहारके लिये सुखप्रद तथा अत्यन्त निर्जन स्थानमें भगवती स्वाहाके साथ दिव्य एक सौ वर्षोंतक रमण करते रहे और अग्निके तेजसे उन्होंने गर्भधारण कर लिया। देवी स्वाहा उस गर्भको दिव्य बारह वर्षोंतक धारण किये रहीं। तत्पश्चात् उन भगवती स्वाहाने क्रमसे दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि तथा आहवनीयाग्नि—इन सुन्दर तथा मनोहर पुत्रोंको उत्पन्न किया॥ ३५—३७½॥

ऋषयो मुनयश्चैव ब्राह्मणाः क्षत्रियादयः॥ ३८

स्वाहान्तं मन्त्रमुच्चार्य हविर्दानं च चक्रिरे।
स्वाहायुक्तं च मन्त्रं च यो गृह्णाति प्रशस्तकम्॥ ३९

सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य मन्त्रग्रहणमात्रतः।
विषहीनो यथा सर्पो वेदहीनो यथा द्विजः॥ ४०

पतिसेवाविहीना स्त्री विद्याहीनो यथा पुमान्।
फलशाखाविहीनश्च यथा वृक्षो हि निन्दितः॥ ४१

स्वाहाहीनस्तथा मन्त्रो न हुतः फलदायकः।
परितुष्टा द्विजाः सर्वे देवाः सम्प्रापुराहुतीः॥ ४२

स्वाहान्तेनैव मन्त्रेण सफलं सर्वमेव च।
इत्येवं कथितं सर्वं स्वाहोपाख्यानमुत्तमम्॥ ४३

सुखदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।

नारद उवाच

स्वाहापूजाविधानं च ध्यानं स्तोत्रं मुनीश्वर॥ ४४

सम्पूज्य वह्निस्तुष्टाव येन तद्वद मे प्रभो।

श्रीनारायण उवाच

ध्यानं च सामवेदोक्तं स्तोत्रपूजाविधानकम्॥ ४५

वदामि श्रूयतां ब्रह्मन् सावधानो मुनीश्वर।
सर्वयज्ञारम्भकाले शालग्रामे घटेऽथवा॥ ४६

स्वाहां सम्पूज्य यत्नेन यज्ञं कुर्यात्फलाप्तये।
स्वाहां मन्त्राङ्गयुक्तां च मन्त्रसिद्धिस्वरूपिणीम्॥ ४७

सिद्धां च सिद्धिदां नृणां कर्मणां फलदां शुभाम्।
इति ध्यात्वा च मूलेन दत्त्वा पाद्यादिकं नरः॥ ४८

सर्वसिद्धिं लभेत्स्तुत्वा मूलमन्त्रं मुने शृणु।
ॐ ह्रीं श्रीं वह्निजायायै देव्यै स्वाहेत्यनेन च॥ ४९
यः पूजयेच्च तां भक्त्या सर्वेष्टं सम्भवेद् ध्रुवम्।

तभीसे ऋषि, मुनि, ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि मन्त्रके अन्तमें स्वाहा शब्द जोड़कर मन्त्रोच्चारण करके अग्निमें हवन करने लगे। जो मनुष्य स्वाहायुक्त प्रशस्त मन्त्रका उच्चारण करता है; मन्त्रके उच्चारणमात्रसे उसे सभी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं॥ ३८-३९½॥

जिस प्रकार विषरहित सर्प, वेदविहीन ब्राह्मण, पतिसेवाविहीन स्त्री, विद्यासे शून्य मनुष्य और फल तथा शाखासे रहित वृक्ष निन्दनीय होता है, उसी प्रकार स्वाहारहित मन्त्र निन्द्य होता है; ऐसे मन्त्रसे किया गया हवन फलप्रद नहीं होता॥ ४०-४१½॥

तब समस्त ब्राह्मण सन्तुष्ट हो गये और देवताओंको आहुतियाँ मिलने लगीं। अन्तमें स्वाहायुक्त मन्त्रसे सब कुछ सफल हो जाता है। [हे मुने!] इस प्रकार मैंने भगवती स्वाहासे सम्बन्धित सम्पूर्ण उत्तम आख्यानका वर्णन कर दिया। यह आख्यान सुखदायक, सारभूत तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ४२-४३½॥

नारदजी बोले—हे मुनीश्वर! हे प्रभो! अग्निने जिस पूजा-विधान, ध्यान तथा स्तोत्रद्वारा स्वाहाको प्रसन्न किया था, उसे आप मुझे बताइये॥ ४४½॥

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मन्! हे मुनिश्रेष्ठ! अब मैं भगवतीके सामवेदोक्त ध्यान, स्तोत्र तथा पूजा-विधानको बता रहा हूँ, आप सावधान होकर सुनिये॥ ४५½॥

फलप्राप्तिके निमित्त सम्पूर्ण यज्ञोंके आरम्भिक कालमें शालग्राम अथवा कलशपर यत्नपूर्वक भगवती स्वाहाका विधिवत् पूजन करके यज्ञ करना चाहिये॥ ४६½॥

भगवती स्वाहा वेदांगमय मन्त्रोंसे सम्पन्न, मन्त्रसिद्धिस्वरूपा, सिद्धस्वरूपिणी, मनुष्योंको सिद्धि तथा उनके कर्मोंके फल प्रदान करनेवाली तथा कल्याणमयी हैं—इस प्रकार ध्यान करके मूलमन्त्रसे पाद्य आदि अर्पण करके भगवतीका स्तवन करनेसे मनुष्य सम्पूर्ण सिद्धि प्राप्त कर लेता है। हे मुने! अब मूलमन्त्र सुनिये—'**ॐ ह्रीं श्रीं वह्निजायायै देव्यै स्वाहा**'—इस मन्त्रसे जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक उन भगवती स्वाहाकी पूजा करता है, उसका समस्त अभीष्ट निश्चितरूपसे पूर्ण हो जाता है॥ ४७—४९½॥

वह्निरुवाच

स्वाहा वह्निप्रिया वह्निजाया सन्तोषकारिणी॥ ५०
शक्तिः क्रिया कालदात्री परिपाककरी ध्रुवा।
गतिः सदा नराणां च दाहिका दहनक्षमा॥ ५१
संसारसाररूपा च घोरसंसारतारिणी।
देवजीवनरूपा च देवपोषणकारिणी॥ ५२
षोडशैतानि नामानि यः पठेद्भक्तिसंयुतः।
सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य इह लोके परत्र च॥ ५३
नाङ्गहीनं भवेत्तस्य सर्वं कर्म सुशोभनम्।
अपुत्रो लभते पुत्रं भार्याहीनो लभेत्प्रियाम्॥ ५४
रम्भोपमां स्वकान्तां च सम्प्राप्य सुखमाप्नुयात्॥ ५५

वह्नि बोले—स्वाहा, वह्निप्रिया, वह्निजाया, सन्तोषकारिणी, शक्ति, क्रिया, कालदात्री, परिपाककरी, ध्रुवा, मनुष्योंकी गति, दाहिका, दहनक्षमा, संसारसाररूपा, घोरसंसारतारिणी, देवजीवनरूपा और देवपोषणकारिणी—ये सोलह नाम भगवती स्वाहाके हैं। जो मनुष्य इनका भक्तिपूर्वक पाठ करता है, वह इस लोक तथा परलोकमें सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है। उसका कोई कर्म अपूर्ण नहीं रहता, समस्त कर्म उत्तम फलदायी होते हैं, पुत्रहीन व्यक्ति पुत्रवान् हो जाता है तथा भार्याहीन व्यक्ति पत्नीको प्राप्त कर लेता है और रम्भातुल्य अपनी उस भार्याको प्राप्त करके वह सुख भोगता है॥ ५०—५५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे स्वाहोपाख्यानवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४३॥

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

भगवती स्वधाका उपाख्यान

श्रीनारायण उवाच

श्रृणु नारद वक्ष्यामि स्वधोपाख्यानमुत्तमम्।
पितॄणां च तृप्तिकरं श्राद्धान्नफलवर्धनम्॥ १

सृष्टेरादौ पितृगणान्ससर्ज जगतां विधिः।
चतुरश्च मूर्तिमतस्त्रींश्च तेजःस्वरूपिणः॥ २

दृष्ट्वा सप्तपितृगणान् सुखरूपान्मनोहरान्।
आहारं ससृजे तेषां श्राद्धं तर्पणपूर्वकम्॥ ३

स्नानं तर्पणपर्यन्तं श्राद्धं तु देवपूजनम्।
आह्निकं च त्रिसन्ध्यान्तं विप्राणां च श्रुतौ श्रुतम्॥ ४

नित्यं न कुर्याद्यो विप्रस्त्रिसन्ध्यं श्राद्धतर्पणम्।
बलिं वेदध्वनिं सोऽपि विषहीनो यथोरगः॥ ५

देवीसेवाविहीनश्च श्रीहरेरनिवेद्यभुक्।
भस्मान्तं सूतकं तस्य न कर्मार्हश्च नारद॥ ६

श्रीनारायण बोले—हे नारद! सुनिये, अब मैं स्वधाका उत्तम आख्यान कहूँगा, जो पितरोंके लिये तृप्तिकारक तथा श्राद्धान्नके फलकी वृद्धि करनेवाला है॥ १॥

जगत्का विधान करनेवाले ब्रह्माने सृष्टिके आरम्भमें चार मूर्तिमान् तथा तीन तेजःस्वरूप पितरोंका सृजन किया। उन सातों सुखस्वरूप तथा मनोहर पितरोंको देखकर उन्होंने श्राद्ध-तर्पणपूर्वक उनका आहार भी सृजित किया॥ २-३॥

स्नान, तर्पण, श्राद्ध, देवपूजन तथा त्रिकाल सन्ध्या—ये ब्राह्मणोंके आह्निक कर्म श्रुतिमें प्रसिद्ध हैं॥ ४॥

जो ब्राह्मण प्रतिदिन त्रिकाल सन्ध्या, श्राद्ध, तर्पण, बलिवैश्वदेव और वेदध्वनि नहीं करता, वह विषहीन सर्पके समान है॥ ५॥

हे नारद! जो व्यक्ति भगवतीकी सेवासे वंचित है तथा भगवान् श्रीहरिको बिना नैवेद्य अर्पण किये ही भोजन ग्रहण करता है, उसका अशौच केवल दाहपर्यन्त बना रहता है और वह कोई भी शुभ कृत्य करनेके योग्य नहीं रह जाता॥ ६॥

ब्रह्मा श्राद्धादिकं सृष्ट्वा जगाम पितृहेतवे।
न प्राप्नुवन्ति पितरो ददति ब्राह्मणादयः॥ ७

सर्वे च जग्मुः क्षुधिताः खिन्नास्तु ब्रह्मणः सभाम्।
सर्वं निवेदनं चक्रुस्तमेव जगतां विधिम्॥ ८

ब्रह्मा च मानसीं कन्यां ससृजे च मनोहराम्।
रूपयौवनसम्पन्नां शतचन्द्रनिभाननाम्॥ ९

विद्यावतीं गुणवतीमतिरूपवतीं सतीम्।
श्वेतचम्पकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम्॥ १०

विशुद्धां प्रकृतेरंशां सस्मितां वरदां शुभाम्।
स्वधाभिधां च सुदतीं लक्ष्मीलक्षणसंयुताम्॥ ११

शतपद्मपदन्यस्तपादपद्मं च बिभ्रतीम्।
पत्नीं पितॄणां पद्मास्यां पद्मजां पद्मलोचनाम्॥ १२

पितृभ्यश्च ददौ ब्रह्मा तुष्टेभ्यस्तुष्टिरूपिणीम्।
ब्राह्मणानां चोपदेशं चकार गोपनीयकम्॥ १३

स्वधान्तं मन्त्रमुच्चार्य पितृभ्यो देयमित्यपि।
क्रमेण तेन विप्राश्च पित्रे दानं ददुः पुरा॥ १४

स्वाहा शस्ता देवदाने पितृदाने स्वधा स्मृता।
सर्वत्र दक्षिणा शस्ता हतं यज्ञमदक्षिणम्॥ १५

पितरो देवता विप्रा मुनयो मनवस्तथा।
पूजां चक्रुः स्वधां शान्तां तुष्टुवुः परमादरात्॥ १६

देवादयश्च सन्तुष्टाः परिपूर्णमनोरथाः।
विप्रादयश्च पितरः स्वधादेवीवरेण च॥ १७

इस प्रकार ब्रह्माजी पितरोंके लिये श्राद्ध आदिका विधान करके चले गये, किंतु ब्राह्मण आदि जो श्राद्धीय पदार्थ अर्पण करते थे, उन्हें पितरगण प्राप्त नहीं कर पाते थे॥ ७॥

अतः क्षुधासे व्याकुल तथा उदास मनवाले सभी पितर ब्रह्माजीकी सभामें गये और उन्होंने जगत्का विधान करनेवाले उन ब्रह्माको सारी बात बतायी॥ ८॥

तब ब्रह्माजीने एक मनोहर मानसी कन्याका सृजन किया। वह रूप तथा यौवनसे सम्पन्न थी और उसका मुख सैकड़ों चन्द्रमाओंके समान कान्तिमान् था। वह साध्वी विद्या, गुण तथा परम रूपसे सम्पन्न थी। उसका वर्ण श्वेत चम्पाके समान उज्ज्वल था और वह रत्नमय आभूषणोंसे सुशोभित थी। विशुद्ध, मूलप्रकृतिकी अंशरूपा, वरदायिनी तथा कल्याणमयी वह मन्द-मन्द मुसकानसे युक्त थी। लक्ष्मीके लक्षणोंसे युक्त स्वधा नामक वह देवी सुन्दर दाँतोंवाली थी। शतदलकमलके ऊपर रखे चरणकमलवाली वह देवी अतिशय सुशोभित हो रही थी। पितरोंकी पत्नीस्वरूपा उस कमलोद्भवा स्वधादेवीके मुख तथा नेत्र कमलके समान थे। ब्रह्माजीने उस तुष्टिरूपिणी देवीको सन्तुष्ट पितरोंको समर्पित कर दिया। उसी समय ब्रह्माजीने ब्राह्मणोंको यह गोपनीय उपदेश भी प्रदान किया कि आपलोगोंको अन्तमें स्वधायुक्त मन्त्रका उच्चारण करके ही पितरोंको कव्य पदार्थ अर्पण करना चाहिये। तभीसे ब्राह्मणलोग उसी क्रमसे पितरोंको कव्य प्रदान करने लगे॥ ९—१४॥

देवताओंके लिये हव्य प्रदान करते समय स्वाहा और पितरोंको कव्य प्रदान करते समय स्वधाका उच्चारण श्रेष्ठ माना गया है। दक्षिणा सर्वत्र प्रशस्त मानी गयी है; क्योंकि दक्षिणाविहीन यज्ञ विनष्ट हो जाता है॥ १५॥

उस समय पितरों, देवताओं, ब्राह्मणों, मुनियों तथा मनुगणोंने परम आदरपूर्वक शान्तिस्वरूपिणी भगवती स्वधाकी पूजा तथा स्तुति की॥ १६॥

भगवती स्वधाके वरदानसे पितरगण, देवता तथा विप्र आदि परम सन्तुष्ट तथा पूर्ण मनोरथवाले हो गये॥ १७॥

इत्येवं कथितं सर्वं स्वधोपाख्यानमेव च।
सर्वेषां च तुष्टिकरं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ १८

नारद उवाच

स्वधापूजाविधानं च ध्यानं स्तोत्रं महामुने।
श्रोतुमिच्छामि यत्नेन वद वेदविदांवर॥ १९

श्रीनारायण उवाच

ध्यानं च स्तवनं ब्रह्मन् वेदोक्तं सर्वमङ्गलम्।
सर्वं जानासि च कथं ज्ञातुमिच्छसि वृद्धये॥ २०

शरत्कृष्णत्रयोदश्यां मघायां श्राद्धवासरे।
स्वधां सम्पूज्य यत्नेन ततः श्राद्धं समाचरेत्॥ २१

स्वधां नाभ्यर्च्य यो विप्रः श्राद्धं कुर्यादहंमतिः।
न भवेत्फलभाक्सत्यं श्राद्धस्य तर्पणस्य च॥ २२

ब्रह्मणो मानसीं कन्यां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम्।
पूज्यां वै पितृदेवानां श्राद्धानां फलदां भजे॥ २३

इति ध्यात्वा शिलायां वा ह्यथवा मङ्गले घटे।
दद्यात्पाद्यादिकं तस्यै मूलेनेति श्रुतौ श्रुतम्॥ २४

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं स्वधादेव्यै स्वाहेति च महामुने।
समुच्चार्य तु सम्पूज्य स्तुत्वा तां प्रणमेद् द्विजः॥ २५

स्तोत्रं शृणु मुनिश्रेष्ठ ब्रह्मपुत्र विशारद।
सर्ववाञ्छाप्रदं नृणां ब्रह्मणा यत्कृतं पुरा॥ २६

श्रीनारायण उवाच

स्वधोच्चारणमात्रेण तीर्थस्नायी भवेन्नरः।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो वाजपेयफलं लभेत्॥ २७

हे नारद! इस प्रकार मैंने सभी प्राणियोंको तुष्टि प्रदान करनेवाला यह सम्पूर्ण स्वधाका उपाख्यान आपसे कह दिया; अब आप पुनः क्या सुनना चाहते हैं?॥ १८॥

नारदजी बोले—वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हे महामुने! मैं भगवती स्वधाकी पूजाका विधान, उनका ध्यान तथा स्तोत्र सुनना चाहता हूँ; यत्नपूर्वक बतलाइये॥ १९॥

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मन्! आप समस्त प्राणियोंका मंगल करनेवाला भगवती स्वधाका वेदोक्त ध्यान तथा स्तवन आदि सब कुछ जानते ही हैं तो फिर उसे क्यों जानना चाहते हैं? तो भी लोगोंके कल्याणार्थ मैं उसे आपको बता रहा हूँ—शरत्कालमें आश्विनमासके कृष्णपक्षमें त्रयोदशी तिथिको मघा नक्षत्रमें अथवा श्राद्धके दिन यत्नपूर्वक देवी स्वधाकी विधिवत् पूजा करके श्राद्ध करना चाहिये॥ २०-२१॥

अहंकारयुक्त बुद्धिवाला जो विप्र भगवती स्वधाका पूजन किये बिना ही श्राद्ध करता है, वह श्राद्ध तथा तर्पणका फल प्राप्त नहीं करता, यह सत्य है॥ २२॥

मैं सर्वदा स्थिर यौवनवाली, पितरों तथा देवताओंकी पूज्या और श्राद्धोंका फल प्रदान करनेवाली ब्रह्माकी मानसी कन्या भगवती स्वधाकी आराधना करता हूँ—इस प्रकार ध्यान करके शिला अथवा मंगलमय कलशपर उनका आवाहनकर मूलमन्त्रसे उन्हें पाद्य आदि उपचार अर्पण करने चाहिये—ऐसा श्रुतिमें प्रसिद्ध है॥ २३-२४॥

हे महामुने! द्विजको चाहिये कि '**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं स्वधादेव्यै स्वाहा**' इस मन्त्रका उच्चारण करके उनकी विधिवत् पूजा तथा स्तुति करके उन्हें प्रणाम करे॥ २५॥

हे मुनिश्रेष्ठ! हे ब्रह्मपुत्र! हे विशारद! अब आप सभी मनुष्योंकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण करनेवाले उस स्तोत्रको सुनिये, जिसका पूर्वकालमें ब्रह्माजीने पाठ किया था॥ २६॥

श्रीनारायण बोले—'स्वधा' शब्दका उच्चारण करनेमात्रसे मनुष्य तीर्थस्नायी हो जाता है। वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा वाजपेययज्ञका फल प्राप्त कर लेता है॥ २७॥

स्वधा स्वधा स्वधेत्येवं यदि वारत्रयं स्मरेत्।
श्राद्धस्य फलमाप्नोति बलेश्च तर्पणस्य च॥ २८

यदि मनुष्य स्वधा, स्वधा, स्वधा—इस प्रकार तीन बार स्मरण कर ले तो वह श्राद्ध, बलिवैश्वदेव तथा तर्पणका फल प्राप्त कर लेता है॥ २८॥

श्राद्धकाले स्वधास्तोत्रं यः शृणोति समाहितः।
स लभेच्छ्राद्धसम्भूतं फलमेव न संशयः॥ २९

जो व्यक्ति श्राद्धके अवसरपर सावधान होकर स्वधास्तोत्रका श्रवण करता है, वह श्राद्धसे होनेवाला सम्पूर्ण फल प्राप्त कर लेता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ २९॥

स्वधा स्वधा स्वधेत्येवं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः।
प्रियां विनीतां स लभेत्साध्वीं पुत्रगुणान्विताम्॥ ३०

जो मनुष्य त्रिकाल सन्ध्याके समय स्वधा, स्वधा, स्वधा—ऐसा उच्चारण करता है; उसे पुत्रों तथा सद्गुणोंसे सम्पन्न, विनम्र, प्रिय तथा पतिव्रता स्त्री प्राप्त होती है॥ ३०॥

पितॄणां प्राणतुल्या त्वं द्विजजीवनरूपिणी।
श्राद्धाधिष्ठातृदेवी च श्राद्धादीनां फलप्रदा॥ ३१

हे देवि! आप पितरोंके लिये प्राणतुल्य और ब्राह्मणोंके लिये जीवनस्वरूपिणी हैं। आप श्राद्धकी अधिष्ठात्री देवी हैं और श्राद्ध आदिका फल प्रदान करनेवाली हैं॥ ३१॥

नित्या त्वं सत्यरूपासि पुण्यरूपासि सुव्रते।
आविर्भावतिरोभावौ सृष्टौ च प्रलये तव॥ ३२

हे सुव्रते! आप नित्य, सत्य तथा पुण्यमय विग्रहवाली हैं। आप सृष्टिके समय प्रकट होती हैं तथा प्रलयके समय तिरोहित हो जाती हैं॥ ३२॥

ॐ स्वस्तिश्च नमः स्वाहा स्वधा त्वं दक्षिणा तथा।
निरूपिताश्चतुर्वेदैः प्रशस्ताः कर्मिणां पुनः॥ ३३

आप ॐ, स्वस्ति, नमः, स्वाहा, स्वधा तथा दक्षिणा रूपमें विराजमान हैं। चारों वेदोंने आपकी इन मूर्तियोंको अत्यन्त प्रशस्त बतलाया है। प्राणियोंके कर्मोंकी पूर्तिके लिये ही परमेश्वरने आपकी ये मूर्तियाँ बनायी हैं॥ ३३½॥

कर्मपूर्त्यर्थमेवैता ईश्वरेण विनिर्मिताः।
इत्येवमुक्त्वा स ब्रह्मा ब्रह्मलोके स्वसंसदि॥ ३४

तस्थौ च सहसा सद्यः स्वधा साविर्बभूव ह।
तदा पितृभ्यः प्रददौ तामेव कमलाननाम्॥ ३५

तां सम्प्राप्य ययुस्ते च पितरश्च प्रहर्षिताः।
स्वधास्तोत्रमिदं पुण्यं यः शृणोति समाहितः।
स स्नातः सर्वतीर्थेषु वाञ्छितं फलमाप्नुयात्॥ ३६

ऐसा कहकर ब्रह्माजी ब्रह्मलोकमें अपनी सभामें विराजमान हो गये। उसी समय भगवती स्वधा सहसा प्रकट हो गयीं। तब ब्रह्माजीने उन कमलमुखी स्वधादेवीको पितरोंके लिये समर्पित कर दिया। उन भगवतीको पाकर पितरगण अत्यन्त हर्षित हुए और वहाँसे चले गये। जो मनुष्य एकाग्रचित्त होकर भगवती स्वधाके इस पवित्र स्तोत्रका श्रवण करता है, उसने मानो सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान कर लिया। वह इसके प्रभावसे वांछित फल प्राप्त कर लेता है॥ ३४—३६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे स्वधोपाख्यानवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४४॥

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

भगवती दक्षिणाका उपाख्यान

श्रीनारायण उवाच

उक्तं स्वाहास्वधाख्यानं प्रशस्तं मधुरं परम्।
वक्ष्यामि दक्षिणाख्यानं सावधानो निशामय॥ १

गोपी सुशीला गोलोके पुरासीत्प्रेयसी हरेः।
राधा प्रधाना सध्रीची धन्या मान्या मनोहरा॥ २

अतीव सुन्दरी रामा सुभगा सुदती सती।
विद्यावती गुणवती चातिरूपवती सती॥ ३

कलावती कोमलाङ्गी कान्ता कमललोचना।
सुश्रोणी सुस्तनी श्यामा न्यग्रोधपरिमण्डिता॥ ४

ईषद्धास्यप्रसन्नास्या रत्नालङ्कारभूषिता।
श्वेतचम्पकवर्णाभा बिम्बोष्ठी मृगलोचना॥ ५

कामशास्त्रेषु निपुणा कामिनी हंसगामिनी।
भावानुरक्ता भावज्ञा कृष्णस्य प्रियभामिनी॥ ६

रसज्ञा रसिका रासे रासेशस्य रसोत्सुका।
उवासादक्षिणे क्रोडे राधायाः पुरतः पुरा॥ ७

सम्बभूवानम्रमुखो भयेन मधुसूदनः।
दृष्ट्वा राधां च पुरतो गोपीनां प्रवरोत्तमाम्॥ ८

कामिनीं रक्तवदनां रक्तपङ्कजलोचनाम्।
कोपेन कम्पिताङ्गीं च कोपेन स्फुरिताधराम्॥ ९

वेगेन तां तु गच्छन्तीं विज्ञाय तदनन्तरम्।
विरोधभीतो भगवानन्तर्धानं चकार सः॥ १०

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] मैंने भगवती स्वाहा तथा स्वधाका अत्यन्त मधुर तथा कल्याणकारी उपाख्यान बता दिया। अब मैं भगवती दक्षिणाका आख्यान कह रहा हूँ, सावधान होकर सुनिये॥ १॥

प्राचीनकालमें गोलोकमें भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेयसी सुशीला नामक एक गोपी थी। परम धन्य, मान्य तथा मनोहर वह गोपी भगवती राधाकी प्रधान सखी थी। वह अत्यन्त सुन्दर, लक्ष्मीके लक्षणोंसे सम्पन्न, सौभाग्यवती, उज्ज्वल दाँतोंवाली, परम पतिव्रता, साध्वी, विद्या; गुण तथा रूपसे अत्यधिक सम्पन्न थी। वह विविध कलाओंमें निपुण, कोमल अंगोंवाली, आकर्षक, कमलनयनी, श्यामा, सुन्दर नितम्ब तथा वक्षःस्थलसे सुशोभित होती हुई वट-वृक्षोंसे घिरी रहती थी। उसका मुखमण्डल मन्द मुसकान तथा प्रसन्नतासे युक्त था, वह रत्नमय अलंकारोंसे सुशोभित थी, उसके शरीरकी कान्ति श्वेत चम्पाके समान थी, उसके ओष्ठ बिम्बाफलके समान रक्तवर्णके थे, मृगके सदृश उसके नेत्र थे, कामिनी तथा हंसके समान गतिवाली वह कामशास्त्रमें निपुण थी। भगवान् श्रीकृष्णकी प्रियभामिनी वह सुशीला उनके भावोंको भलीभाँति जानती थी तथा उनके भावोंसे सदा अनुरक्त रहती थी। रसज्ञानसे परिपूर्ण, रासक्रीडाकी रसिक तथा रासेश्वर श्रीकृष्णके प्रेमरसहेतु लालायित रहनेवाली वह गोपी सुशीला एक बार राधाके सामने ही भगवान् श्रीकृष्णके वाम अंकमें बैठ गयी॥ २—७॥

तब मधुसूदन श्रीकृष्णने गोपिकाओंमें परम श्रेष्ठ राधाकी ओर देखकर भयभीत हो अपना मुख नीचे कर लिया। उस समय कामिनी राधाका मुख लाल हो गया और उनके नेत्र रक्तकमलके समान हो गये। क्रोधसे उनके अंग काँप रहे थे तथा ओठ प्रस्फुरित हो रहे थे। तब उन राधाको बड़े वेगसे जाती देखकर उनके विरोधसे अत्यन्त डरे हुए भगवान् श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये॥ ८—१०॥

पलायन्तं च कान्तं च शान्तं सत्त्वं सुविग्रहम्।
विलोक्य कम्पिता गोप्यः सुशीलाद्यास्ततो भिया॥ ११

विलोक्य लम्पटं तत्र गोपीनां लक्षकोटयः।
पुटाञ्जलियुता भीता भक्तिनम्रात्मकन्धराः॥ १२

रक्ष रक्षेत्युक्तवन्त्यो देवीमिति पुनः पुनः।
ययुर्भयेन शरणं यस्याश्चरणपङ्कजे॥ १३

त्रिलक्षकोटयो गोपाः सुदामादय एव च।
ययुर्भयेन शरणं तत्पादाब्जे च नारद॥ १४

पलायन्तं च कान्तं च विज्ञाय परमेश्वरी।
पलायन्तीं सहचरीं सुशीलां च शशाप सा॥ १५

अद्यप्रभृति गोलोकं सा चेदायाति गोपिका।
सद्यो गमनमात्रेण भस्मसाच्च भविष्यति॥ १६

इत्येवमुक्त्वा तत्रैव देवदेवेश्वरी रुषा।
रासेश्वरी रासमध्ये रासेशमाजुहाव ह॥ १७

नालोक्य पुरतः कृष्णं राधा विरहकातरा।
युगकोटिसमं मेने क्षणभेदेन सुव्रता॥ १८

हे कृष्ण प्राणनाथेशागच्छ प्राणाधिकप्रिय।
प्राणाधिष्ठातृदेवेश प्राणा यान्ति त्वया विना॥ १९

स्त्रीगर्वः पतिसौभाग्याद्वर्धते च दिने दिने।
सुखं च विपुलं यस्मात्तं सेवेद्धर्मतः सदा॥ २०

पतिर्बन्धुः कुलस्त्रीणामधिदेवः सदागतिः।
परसम्पत्स्वरूपश्च मूर्तिमान् भोगदः सदा॥ २१

धर्मदः सुखदः शश्वत्प्रीतिदः शान्तिदः सदा।
सम्मानैर्दीप्यमानश्च मानदो मानखण्डनः॥ २२

सारात्सारतरः स्वामी बन्धूनां बन्धुवर्धनः।
न च भर्तुः समो बन्धुर्बन्धोर्बन्धुषु दृश्यते॥ २३

कान्तिमान्, शान्त स्वभाववाले, सत्त्वगुणसम्पन्न तथा सुन्दर विग्रहवाले भगवान् श्रीकृष्णको अन्तर्हित हुआ देखकर सुशीला आदि गोपियाँ भयसे काँपने लगीं। श्रीकृष्णको अन्तर्धान हुआ देखकर वे भयभीत लाखों-करोड़ों गोपियाँ भक्तिपूर्वक कन्धा झुकाकर और दोनों हाथ जोड़कर 'रक्षा कीजिये-रक्षा कीजिये'—ऐसा भगवती राधासे बार-बार कहने लगीं और उन राधाके चरणकमलमें भयपूर्वक शरणागत हो गयीं। हे नारद! वहाँके तीन लाख करोड़ सुदामा आदि गोप भी भयभीत होकर उन राधाके चरण-कमलकी शरणमें गये॥ ११—१४॥

परमेश्वरी राधाने अपने कान्त श्रीकृष्णको अन्तर्धान तथा सहचरी सुशीलाको पलायन करते देखकर उन्हें शाप दे दिया कि यदि गोपिका सुशीला आजसे गोलोकमें आयेगी, तो वह आंते ही भस्मसात् हो जायगी॥ १५-१६॥

ऐसा कहकर देवदेवेश्वरी रासेश्वरी राधा रोषपूर्वक रासमण्डलके मध्य रासेश्वर भगवान् श्रीकृष्णको पुकारने लगीं॥ १७॥

श्रीकृष्णको समक्ष न देखकर राधिकाजी विरहसे व्याकुल हो गयीं। उन परम साध्वीको एक-एक क्षण करोड़ों युगोंके समान प्रतीत होने लगा। उन्होंने श्रीकृष्णसे प्रार्थना की—हे कृष्ण! हे प्राणनाथ! हे ईश! आ जाइये। हे प्राणोंसे अधिक प्रिय तथा प्राणके अधिष्ठाता देवेश्वर! आपके बिना मेरे प्राण निकल रहे हैं॥ १८-१९॥

पतिके सौभाग्यसे स्त्रियोंका स्वाभिमान दिन-प्रतिदिन बढ़ता रहता है और उन्हें महान् सुख प्राप्त होता है। अतः स्त्रीको सदा धर्मपूर्वक पतिकी सेवा करनी चाहिये॥ २०॥

कुलीन स्त्रियोंके लिये पति ही बन्धु, अधिदेवता, आश्रय, परम सम्पत्तिस्वरूप तथा भोग प्रदान करनेवाला साक्षात् विग्रह है॥ २१॥

वही स्त्रीके लिये धर्म, सुख, निरन्तर प्रीति, सदा शान्ति तथा सम्मान प्रदान करनेवाला; आदरसे देदीप्यमान होनेवाला और मानभंग भी करनेवाला है। पति ही स्त्रीके लिये परम सार है और बन्धुओंमें बन्धुभावको बढ़ानेवाला है। समस्त बन्धु-बान्धवोंमें पतिके समान कोई बन्धु दिखायी नहीं देता॥ २२-२३॥

भरणादेव भर्ता च पालनात्पतिरुच्यते।
शरीरेशाच्च स स्वामी कामदः कान्त उच्यते॥ २४

बन्धुश्च सुखवृद्ध्या च प्रीतिदानात्प्रियः स्मृतः।
ऐश्वर्यदानादीशश्च प्राणेशात्प्राणनायकः॥ २५

रतिदानाच्च रमणः प्रियो नास्ति प्रियात्परः।
पुत्रस्तु स्वामिनः शुक्राज्जायते तेन स प्रियः॥ २६

वह स्त्रीका भरण करनेके कारण 'भर्ता', पालन करनेके कारण 'पति', उसके शरीरका शासक होनेके कारण 'स्वामी' तथा उसकी कामनाएँ पूर्ण करनेके कारण 'कान्त' कहा जाता है। वह सुखकी वृद्धि करनेसे 'बन्धु', प्रीति प्रदान करनेसे 'प्रिय', ऐश्वर्य प्रदान करनेसे 'ईश', प्राणका स्वामी होनेसे 'प्राणनायक' और रतिसुख प्रदान करनेसे 'रमण' कहा गया है। स्त्रियोंके लिये पतिसे बढ़कर दूसरा कोई प्रिय नहीं है। पतिके शुक्रसे पुत्र उत्पन्न होता है, इसलिये वह प्रिय होता है॥ २४—२६॥

शतपुत्रात्परः स्वामी कुलजानां प्रियः सदा।
असत्कुलप्रसूता या कान्तं विज्ञातुमक्षमा॥ २७

उत्तम कुलमें उत्पन्न स्त्रियोंके लिये उनका पति सदा सौ पुत्रोंसे भी अधिक प्रिय होता है। जो असत्-कुलमें उत्पन्न स्त्री है, वह पतिके महत्त्वको समझनेमें सर्वथा असमर्थ रहती है॥ २७॥

स्नानं च सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दक्षिणा।
प्रादक्षिण्यं पृथिव्याश्च सर्वाणि च तपांसि च॥ २८

सर्वाण्येव व्रतादीनि महादानानि यानि च।
उपोषणानि पुण्यानि यानि यानि श्रुतानि च॥ २९

गुरुसेवा विप्रसेवा देवसेवादिकं च यत्।
स्वामिनः पादसेवायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ ३०

सभी तीर्थोंमें स्नान, सम्पूर्ण यज्ञोंमें दक्षिणादान, पृथ्वीकी प्रदक्षिणा, सम्पूर्ण तप, सभी प्रकारके व्रत और जो महादान आदि हैं, जो-जो पुण्यप्रद उपवास आदि प्रसिद्ध हैं और गुरुसेवा, विप्रसेवा तथा देव-पूजन आदि जो भी शुभ कृत्य हैं, वे सब पतिके चरणकी सेवाकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं हैं॥ २८—३०॥

गुरुविप्रेन्द्रदेवेषु सर्वेभ्यश्च पतिर्गुरुः।
विद्यादाता यथा पुंसां कुलजानां तथा प्रियः॥ ३१

गुरु, ब्राह्मण और देवता—इन सभीकी अपेक्षा स्त्रीके लिये पति ही श्रेष्ठ है। जिस प्रकार पुरुषोंके लिये विद्याका दान करनेवाला गुरु श्रेष्ठ है; उसी प्रकार कुलीन स्त्रियोंके लिये पति श्रेष्ठ है॥ ३१॥

गोपीनां लक्षकोटीनां गोपानां च तथैव च।
ब्रह्माण्डानामसंख्यानां तत्रस्थानां तथैव च॥ ३२

विश्वादिगोलकान्तानामीश्वरी यत्प्रसादतः।
अहं न जाने तं कान्तं स्त्रीस्वभावो दुरत्ययः॥ ३३

जिनके अनुग्रहसे मैं लाखों-करोड़ गोपियों, गोपों, असंख्य ब्रह्माण्डों, वहाँके निवासियों तथा अखिल ब्रह्माण्ड-गोलककी ईश्वरी बनी हूँ, अपने उन कान्त श्रीकृष्णका रहस्य मैं नहीं जानती। स्त्रियोंका स्वभाव अत्यन्त दुर्लंघ्य है॥ ३२-३३॥

इत्युक्त्वा राधिका कृष्णं तत्र दध्यौ स्वभक्तितः।
रुरोद प्रेम्णा सा राधा नाथ नाथेति चाब्रवीत्॥ ३४
दर्शनं देहि रमण दीना विरहदुःखिता।

ऐसा कहकर श्रीराधा भक्तिपूर्वक श्रीकृष्णका ध्यान करने लगीं। विरहसे दुःखित तथा दीन वे राधिका प्रेमके कारण रो रही थीं और 'हे नाथ! हे रमण! मुझे दर्शन दीजिये'—ऐसा कह रही थीं॥ ३४½॥

अथ सा दक्षिणा देवी ध्वस्ता गोलोकतो मुने॥ ३५

सुचिरं च तपस्तप्त्वा विवेश कमलातनौ।
अथ देवादयः सर्वे यज्ञं कृत्वा सुदुष्करम्॥ ३६

नालभंस्ते फलं तेषां विषण्णाः प्रययुर्विधिम्।
विधिर्निवेदनं श्रुत्वा देवादीनां जगत्पतिम्॥ ३७

दध्यौ च सुचिरं भक्त्या प्रत्यादेशमवाप सः।
नारायणश्च भगवान् महालक्ष्याश्च देहतः॥ ३८

विनिष्कृष्य मर्त्यलक्ष्मीं ब्रह्मणे दक्षिणां ददौ।
ब्रह्मा ददौ तां यज्ञाय पूरणार्थं च कर्मणाम्॥ ३९

यज्ञः सम्पूज्य विधिवत्तां तुष्टाव तदा मुदा।
तप्तकाञ्चनवर्णाभां चन्द्रकोटिसमप्रभाम्॥ ४०

अतीव कमनीयां च सुन्दरीं सुमनोहराम्।
कमलास्यां कोमलाङ्गीं कमलायतलोचनाम्॥ ४१

कमलासनपूज्यां च कमलाङ्गसमुद्भवाम्।
वह्निशुद्धांशुकाधानां बिम्बोष्ठीं सुदतीं सतीम्॥ ४२

बिभ्रतीं कबरीभारं मालतीमाल्यसंयुतम्।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषणभूषिताम्॥ ४३

सुवेषाढ्यां च सुस्नातां मुनिमानसमोहिनीम्।
कस्तूरीबिन्दुभिः सार्धं सुगन्धिचन्दनेन्दुभिः॥ ४४

सिन्दूरबिन्दुनाल्पेनाप्यलकाधःस्थलोज्ज्वलाम्।
सुप्रशस्तनितम्बाढ्यां बृहच्छ्रोणिपयोधराम्॥ ४५

हे मुने! इसके बाद राधाके द्वारा गोलोकसे च्युत सुशीला नामक वह गोपी दक्षिणा नामसे प्रसिद्ध हुई। दीर्घकालतक तपस्या करके उसने भगवती लक्ष्मीके विग्रहमें स्थान प्राप्त कर लिया। अत्यन्त दुष्कर यज्ञ करनेपर भी जब देवताओंको यज्ञफल नहीं प्राप्त हुआ, तब वे उदास होकर ब्रह्माजीके पास गये॥ ३५-३६॥

देवताओंकी प्रार्थना सुनकर ब्रह्माजीने बहुत समयतक भक्तिपूर्वक जगत्पति भगवान् श्रीहरिका ध्यान किया। अन्तमें उन्हें प्रत्यादेश प्राप्त हुआ। भगवान् नारायणने महालक्ष्मीके विग्रहसे मर्त्यलक्ष्मीको प्रकट करके और उसका नाम दक्षिणा रखकर ब्रह्माजीको सौंप दिया। ब्रह्माजीने भी यज्ञकार्योंकी सम्पन्नताके लिये उन देवी दक्षिणाको यज्ञपुरुषको समर्पित कर दिया। तब यज्ञपुरुषने प्रसन्नतापूर्वक उन देवी दक्षिणाकी विधिवत् पूजा करके उनकी स्तुति की॥ ३७—३९½॥

उन भगवती दक्षिणाका वर्ण तपाये हुए सोनेके समान था; उनके विग्रहकी कान्ति करोड़ों चन्द्रोंके तुल्य थी; वे अत्यन्त कमनीय, सुन्दर तथा मनोहर थीं; उनका मुख कमलके समान था; उनके अंग अत्यन्त कोमल थे; कमलके समान उनके विशाल नेत्र थे; कमलके आसनपर पूजित होनेवाली वे भगवती कमलाके शरीरसे प्रकट हुई थीं, उन्होंने अग्निके समान शुद्ध वस्त्र धारण कर रखे थे; उन साध्वीके ओष्ठ बिम्बाफलके समान थे; उनके दाँत अत्यन्त सुन्दर थे; उन्होंने अपने केशपाशमें मालतीके पुष्पोंकी माला धारण कर रखी थी; उनके प्रसन्नतायुक्त मुखमण्डलपर मन्द मुसकान व्याप्त थी; वे रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत थीं; उनका वेष अत्यन्त सुन्दर था; वे विधिवत् स्नान किये हुए थीं; वे मुनियोंके भी मनको मोह लेती थीं; कस्तूरीमिश्रित सुगन्धित चन्दनसे बिन्दीके रूपमें अर्धचन्द्राकार तिलक उनके ललाटपर सुशोभित हो रहा था; केशोंके नीचेका भाग (सीमन्त) सिन्दूरकी छोटी-छोटी बिन्दियोंसे अत्यन्त प्रकाशमान था। सुन्दर नितम्ब, बृहत् श्रोणी तथा विशाल वक्षःस्थलसे वे शोभित हो रही थीं; उनका विग्रह कामदेवका

कामदेवाधाररूपां कामबाणप्रपीडिताम्।
तां दृष्ट्वा रमणीयां च यज्ञो मूर्च्छामवाप ह॥ ४६

पत्नीं तामेव जग्राह विधिबोधितपूर्वकम्।
दिव्यं वर्षशतं चैव तां गृहीत्वा तु निर्जने॥ ४७

यज्ञो रेमे मुदा युक्तो रामेशो रमया सह।
गर्भं दधार सा देवी दिव्यं द्वादशवर्षकम्॥ ४८

ततः सुषाव पुत्रं च फलं वै सर्वकर्मणाम्।
परिपूर्णे कर्मणि च तत्पुत्रः फलदायकः॥ ४९

यज्ञो दक्षिणया सार्धं पुत्रेण च फलेन च।
कर्मिणां फलदाता चेत्येवं वेदविदो विदुः॥ ५०

यज्ञश्च दक्षिणां प्राप्य पुत्रं च फलदायकम्।
फलं ददौ च सर्वेभ्यः कर्मणां चैव नारद॥ ५१

तदा देवादयस्तुष्टाः परिपूर्णमनोरथाः।
स्वस्थाने ते ययुः सर्वे धर्मवक्त्रादिदं श्रुतम्॥ ५२

कृत्वा कर्म च कर्ता च तूर्णं दद्याच्च दक्षिणाम्।
तत्क्षणं फलमाप्नोति वेदैरुक्तमिदं मुने॥ ५३

कर्मी कर्मणि पूर्णे च तत्क्षणे यदि दक्षिणाम्।
न दद्याद् ब्राह्मणेभ्यश्च दैवेनाज्ञानतोऽथवा॥ ५४

मुहूर्ते समतीते तु द्विगुणा सा भवेद् ध्रुवम्।
एकरात्रे व्यतीते तु भवेच्छतगुणा च सा॥ ५५

त्रिरात्रे तच्छतगुणा सप्ताहे द्विगुणा ततः।
मासे लक्षगुणा प्रोक्ता ब्राह्मणानां च वर्धते॥ ५६

संवत्सरे व्यतीते तु सा त्रिकोटिगुणा भवेत्।
कर्म तद्यजमानानां सर्वं वै निष्फलं भवेत्॥ ५७

आधारस्वरूप था और वे कामदेवके बाणसे अत्यन्त व्यथित थीं—ऐसी उन रमणीया दक्षिणाको देखकर यज्ञपुरुष मूर्च्छित हो गये। पुनः ब्रह्माजीके कथनानुसार उन्होंने भगवती दक्षिणाको पत्नीरूपमें स्वीकार कर लिया॥ ४०—४६ १/२ ॥

तत्पश्चात् यज्ञपुरुष उन रामेशने रमारूपिणी भगवती दक्षिणाको निर्जन स्थानमें ले जाकर उनके साथ दिव्य सौ वर्षोंतक आनन्दपूर्वक रमण किया। वे देवी दक्षिणा दिव्य बारह वर्षोंतक गर्भ धारण किये रहीं। तत्पश्चात् उन्होंने सभी कर्मोंके फलरूप पुत्रको जन्म दिया। कर्मके परिपूर्ण होनेपर वही पुत्र फल प्रदान करनेवाला होता है। भगवान् यज्ञ भगवती दक्षिणा तथा अपने पुत्र फलसे युक्त होनेपर ही कर्म करनेवालोंको फल प्रदान करते हैं—ऐसा वेदवेत्ता पुरुषोंने कहा है॥ ४७—५०॥

हे नारद! इस प्रकार देवी दक्षिणा तथा फलदायक पुत्रको प्राप्तकर यज्ञपुरुष सभी प्राणियोंको उनके कर्मोंका फल प्रदान करने लगे। तदनन्तर परिपूर्ण मनोरथवाले वे सभी देवगण प्रसन्न होकर अपने-अपने स्थानको चले गये—ऐसा मैंने धर्मदेवके मुखसे सुना है॥ ५१-५२॥

हे मुने! कर्ताको चाहिये कि कर्म करके तुरंत दक्षिणा दे दे। ऐसा करनेसे कर्ताको उसी क्षण फल प्राप्त हो जाता है—ऐसा वेदोंने कहा है॥ ५३॥

कर्मके सम्पन्न हो जानेपर यदि कर्ता दैववश या अज्ञानसे उसी क्षण ब्राह्मणोंको दक्षिणा नहीं दे देता, तो एक मुहूर्त बीतनेपर वह दक्षिणा निश्चय ही दो गुनी हो जाती है और एक रात बीतनेपर वह सौ गुनी हो जाती है। वह दक्षिणा तीन रात बीतनेके बाद उसकी सौ गुनी और एक सप्ताह बीतनेपर उसकी दो सौ गुनी हो जाती है। एक माहके बाद वह लाख गुनी बतायी गयी है। इस प्रकार ब्राह्मणोंकी दक्षिणा बढ़ती जाती है और एक वर्ष बीत जानेपर वह तीन करोड़ गुनी हो जाती है, जिससे यजमानोंका सारा कर्म भी व्यर्थ हो जाता है॥ ५४—५७॥

स च ब्रह्मस्वहारी च न कर्मार्होऽशुचिर्नरः।
दरिद्रो व्याधियुक्तश्च तेन पापेन पातकी॥ ५८

तद्गृहाद्याति लक्ष्मीश्च शापं दत्त्वा सुदारुणम्।
पितरो नैव गृह्णन्ति तद्दत्तं श्राद्धतर्पणम्॥ ५९

एवं सुराश्च तत्पूजां तद्दत्तामग्निराहुतिम्।
दत्तं न दीयते दानं ग्रहीता नैव याचते॥ ६०

उभौ तौ नरके यातश्छिन्नरज्जौ यथा घटः।
नार्पयेद्यजमानश्चेद्याचितश्चापि दक्षिणाम्॥ ६१

भवेद् ब्रह्मस्वापहारी कुम्भीपाकं व्रजेद् ध्रुवम्।
वर्षलक्षं वसेत्तत्र यमदूतेन ताडितः॥ ६२

ततो भवेत्स चाण्डालो व्याधियुक्तो दरिद्रकः।
पातयेत्पुरुषान्सप्त पूर्वांश्च सप्त जन्मतः॥ ६३

इत्येवं कथितं विप्र किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।

नारद उवाच

यत्कर्म दक्षिणाहीनं को भुङ्क्ते तत्फलं मुने॥ ६४

पूजाविधिं दक्षिणायाः पुरा यज्ञकृतं वद।

श्रीनारायण उवाच

कर्मणोऽदक्षिणस्यैव कुत एव फलं मुने॥ ६५

सदक्षिणे कर्मणि च फलमेव प्रवर्तते।
अदक्षिणं च यत्कर्म तद्भुङ्क्ते च बलिर्मुने॥ ६६
बलये तत्प्रदत्तं च वामनेन पुरा मुने।

ब्राह्मणका धन हरनेवाला वह मनुष्य अपवित्र हो जाता है तथा किसी भी कर्मानुष्ठानके योग्य नहीं रह जाता। उस पापके कारण वह पापी मनुष्य रोगी तथा दरिद्र रहता है। भगवती लक्ष्मी उसे दारुण शाप देकर उसके घरसे चली जाती हैं। उसके द्वारा प्रदत्त श्राद्ध तथा तर्पणको पितर ग्रहण नहीं करते। उसी प्रकार देवतागण उसकी पूजा तथा उसके द्वारा अग्निमें प्रदत्त आहुतिको स्वीकार नहीं करते॥ ५८-५९½ ॥

यदि यज्ञके समय कर्ताके द्वारा संकल्पित दान नहीं दिया गया और प्रतिग्रह लेनेवालेने उसे माँगा भी नहीं, तो वे दोनों ही (यजमान और ब्राह्मण) नरकमें उसी प्रकार गिरते हैं, जैसे रस्सी टूट जानेपर घड़ा॥ ६०½ ॥

ब्राह्मणके याचना करनेपर भी यदि यजमान उसे दक्षिणा नहीं देता, तो वह ब्राह्मणका धन हरण करनेवाला कहा जाता है और वह निश्चितरूपसे कुम्भीपाक नरकमें पड़ता है। वहाँ यमदूतोंके द्वारा पीटा जाता हुआ वह एक लाख वर्षतक रहता है। उसके बाद वह चाण्डाल होकर सदा दरिद्र तथा रोगी बना रहता है। वह अपनी सात पीढ़ी पूर्वके तथा सात पीढ़ी बादके पुरुषोंको नरकमें गिरा देता है। हे विप्र! मैंने यह सब कह दिया। अब आप पुनः क्या सुनना चाहते हैं?॥ ६१—६३½ ॥

नारदजी बोले—हे मुने! जो कर्म बिना दक्षिणाके किया जाता है, उसका फल कौन भोगता है? साथ ही, यज्ञपुरुषके द्वारा पूर्वकालमें की गयी भगवती दक्षिणाकी पूजाविधिको भी मुझे बतलाइये॥ ६४½ ॥

श्रीनारायण बोले—हे मुने! दक्षिणाविहीन कर्मका फल हो ही कहाँ सकता है? दक्षिणायुक्त कर्ममें ही फल-प्रदानका सामर्थ्य होता है। हे मुने! जो कर्म बिना दक्षिणाके सम्पन्न होता है, उसके फलका भोग राजा बलि करते हैं। हे मुने! पूर्वकालमें भगवान् वामन राजा बलिके लिये वैसा कर्म अर्पण कर चुके हैं॥ ६५-६६½ ॥

अश्रोत्रियः श्राद्धद्रव्यमश्रद्धादानमेव च॥ ६७

वृषलीपतिविप्राणां पूजाद्रव्यादिकं च यत्।
असद्द्विजैः कृतं यज्ञमशुचेः पूजनं च यत्॥ ६८

गुरावभक्तस्य कर्म बलिर्भुङ्क्ते न संशयः।
दक्षिणायाश्च यद्ध्यानं स्तोत्रं पूजाविधिक्रमम्॥ ६९

तत्सर्वं कण्वशाखोक्तं प्रवक्ष्यामि निशामय।
पुरा सम्प्राप्य तां यज्ञः कर्मदक्षां च दक्षिणाम्॥ ७०

मुमोहास्याः स्वरूपेण तुष्टाव कामकातरः।

यज्ञ उवाच

पुरा गोलोकगोपी त्वं गोपीनां प्रवरा वरा॥ ७१

राधासमा तत्सखी च श्रीकृष्णप्रेयसी प्रिया।
कार्तिकीपूर्णिमायां तु रासे राधामहोत्सवे॥ ७२

आविर्भूता दक्षिणांसाल्लक्ष्म्याश्च तेन दक्षिणा।
पुरा त्वं च सुशीलाख्या ख्याता शीलेन शोभने॥ ७३

लक्ष्मीदक्षांसभागात्त्वं राधाशापाच्च दक्षिणा।
गोलोकात्त्वं परिभ्रष्टा मम भाग्यादुपस्थिता॥ ७४

कृपां कुरु महाभागे मामेव स्वामिनं कुरु।
कर्मिणां कर्मणां देवी त्वमेव फलदा सदा॥ ७५

त्वया विना च सर्वेषां सर्वं कर्म च निष्फलम्।
त्वया विना तथा कर्म कर्मिणां च न शोभते॥ ७६

ब्रह्मविष्णुमहेशाश्च दिक्पालादय एव च।
कर्मणश्च फलं दातुं न शक्ताश्च त्वया विना॥ ७७

अश्रोत्रिय व्यक्तिके द्वारा श्रद्धाहीन होकर दिया गया श्राद्धद्रव्य तथा दान आदि, शूद्रापति ब्राह्मणोंका पूजा-द्रव्य आदि, सदाचारहीन विप्रोंद्वारा किया गया यज्ञ, अपवित्र व्यक्तिका पूजन और गुरुभक्तिसे हीन मनुष्यके कर्मफलको राजा बलि आहारके रूपमें ग्रहण करते हैं, इसमें संशय नहीं है॥ ६७-६८½॥

[हे नारद!] भगवती दक्षिणाका जो भी ध्यान, स्तोत्र तथा पूजाविधिका क्रम आदि है, वह सब कण्वशाखामें वर्णित है, अब मैं उसे बताऊँगा, ध्यानपूर्वक सुनिये॥ ६९½॥

पूर्वसमयमें कर्मका फल प्रदान करनेमें दक्ष उन भगवती दक्षिणाको प्राप्त करके वे यज्ञपुरुष कामपीड़ित होकर उनके स्वरूपपर मोहित हो गये और उनकी स्तुति करने लगे॥ ७०½॥

यज्ञ बोले—[हे महाभागे!] तुम पूर्वकालमें गोलोककी एक गोपी थी और गोपियोंमें परम श्रेष्ठ थी। श्रीकृष्ण तुमसे अत्यधिक प्रेम करते थे और तुम राधाके समान ही उन श्रीकृष्णकी प्रिय सखी थी॥ ७१½॥

एक बार कार्तिकपूर्णिमाको राधामहोत्सवके अवसरपर रासलीलामें तुम भगवती लक्ष्मीके दक्षिणांशसे प्रकट हो गयी थी, उसी कारण तुम्हारा नाम दक्षिणा पड़ गया। हे शोभने! इससे भी पहले अपने उत्तम शीलके कारण तुम सुशीला नामसे प्रसिद्ध थी। तुम भगवती राधिकाके शापसे गोलोकसे च्युत होकर और पुनः देवी लक्ष्मीके दक्षिणांशसे आविर्भूत हो अब देवी दक्षिणाके रूपमें मेरे सौभाग्यसे मुझे प्राप्त हुई हो। हे महाभागे! मुझपर कृपा करो और मुझे ही अपना स्वामी बना लो॥ ७२—७४½॥

तुम्हीं यज्ञ करनेवालोंको उनके कर्मोंका सदा फल प्रदान करनेवाली देवी हो। तुम्हारे बिना सम्पूर्ण प्राणियोंका सारा कर्म निष्फल हो जाता है और तुम्हारे बिना अनुष्ठानकर्ताओंका कर्म शोभा नहीं पाता है॥ ७५-७६॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश, दिक्पाल आदि भी तुम्हारे बिना प्राणियोंको कर्मका फल प्रदान करनेमें समर्थ नहीं हैं॥ ७७॥

कर्मरूपी स्वयं ब्रह्मा फलरूपी महेश्वरः।
यज्ञरूपी विष्णुरहं त्वमेषां साररूपिणी॥ ७८

फलदातृपरं ब्रह्म निर्गुणा प्रकृतिः परा।
स्वयं कृष्णश्च भगवान् स च शक्तस्त्वया सह॥ ७९

त्वमेव शक्तिः कान्ते मे शश्वज्जन्मनि जन्मनि।
सर्वकर्मणि शक्तोऽहं त्वया सह वरानने॥ ८०

इत्युक्त्वा च पुरस्तस्थौ यज्ञाधिष्ठातृदेवता।
तुष्टा बभूव सा देवी भेजे तं कमलाकला॥ ८१

इदं च दक्षिणास्तोत्रं यज्ञकाले च यः पठेत्।
फलं च सर्वयज्ञानां प्राप्नोति नात्र संशयः॥ ८२

राजसूये वाजपेये गोमेधे नरमेधके।
अश्वमेधे लाङ्गले च विष्णुयज्ञे यशस्करे॥ ८३

धनदे भूमिदे पूर्ते फलदे गजमेधके।
लोहयज्ञे स्वर्णयज्ञे रत्नयज्ञेऽथ ताम्रके॥ ८४

शिवयज्ञे रुद्रयज्ञे शक्रयज्ञे च बन्धुके।
वृष्टौ वरुणयागे च कण्डके वैरिमर्दने॥ ८५

शुचियज्ञे धर्मयज्ञेऽध्वरे च पापमोचने।
ब्रह्माणीकर्मयागे च योनियागे च भद्रके॥ ८६

एतेषां च समारम्भे इदं स्तोत्रं च यः पठेत्।
निर्विघ्नेन च तत्कर्म सर्वं भवति निश्चितम्॥ ८७

इदं स्तोत्रं च कथितं ध्यानं पूजाविधिं शृणु।
शालग्रामे घटे वापि दक्षिणां पूजयेत्सुधीः॥ ८८

लक्ष्मीदक्षांससम्भूतां दक्षिणां कमलाकलाम्।
सर्वकर्मसुदक्षां च फलदां सर्वकर्मणाम्॥ ८९

विष्णोः शक्तिस्वरूपां च पूजितां वन्दितां शुभाम्।
शुद्धिदां शुद्धिरूपां च सुशीलां शुभदां भजे॥ ९०

ब्रह्मा स्वयं कर्मरूप हैं, महेश्वर फलरूप हैं और मैं विष्णु यज्ञरूप हूँ, इन सबमें तुम ही साररूपा हो॥ ७८॥

फल प्रदान करनेवाले परब्रह्म, गुणरहित पराप्रकृति तथा स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारे ही सहयोगसे शक्तिमान् हैं॥ ७९॥

हे कान्ते! जन्म-जन्मान्तरमें तुम्हीं सदा मेरी शक्ति रही हो। हे वरानने! तुम्हारे साथ रहकर ही मैं सारा कर्म करनेमें समर्थ हूँ॥ ८०॥

ऐसा कहकर यज्ञके अधिष्ठातृदेवता भगवान् यज्ञपुरुष दक्षिणाके समक्ष स्थित हो गये। तब भगवती कमलाकी कलास्वरूपिणी देवी दक्षिणा प्रसन्न हो गयीं और उन्होंने यज्ञपुरुषका वरण कर लिया॥ ८१॥

जो मनुष्य यज्ञके अवसरपर भगवती दक्षिणाके इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्राप्त कर लेता है; इसमें संशय नहीं है॥ ८२॥

राजसूय, वाजपेय, गोमेध, नरमेध, अश्वमेध, लांगलयज्ञ, यश बढ़ानेवाला विष्णुयज्ञ, धनदायक और भूमि देनेवाला पूर्तयज्ञ, फल प्रदान करनेवाला गजमेध, लोहयज्ञ, स्वर्णयज्ञ, रत्नयज्ञ, ताम्रयज्ञ, शिवयज्ञ, रुद्रयज्ञ, इन्द्रयज्ञ, बन्धुकयज्ञ, वृष्टिकारक वरुणयज्ञ, वैरिमर्दन कण्डकयज्ञ, शुचियज्ञ, धर्मयज्ञ, पापमोचनयज्ञ, ब्रह्माणीकर्मयज्ञ और कल्याणकारी अम्बायज्ञ—इन सभीके आरम्भमें जो व्यक्ति इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसका सारा यज्ञकर्म निर्विघ्नरूपसे अवश्य ही सम्पन्न हो जाता है॥ ८३—८७॥

यह स्तोत्र मैंने कह दिया, अब ध्यान और पूजा-विधि सुनो। शालग्राममें अथवा कलशपर भगवती दक्षिणाका आवाहन करके विद्वान्को उनकी पूजा करनी चाहिये ॥ ८८॥

[उनका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—] भगवती लक्ष्मीके दाहिने स्कन्धसे आविर्भूत होनेके कारण दक्षिणा नामसे विख्यात ये देवी साक्षात् कमलाकी कला हैं, सभी कर्मोंमें अत्यन्त प्रवीण हैं, सम्पूर्ण कर्मोंका फल प्रदान करनेवाली हैं, भगवान् विष्णुकी शक्तिस्वरूपा हैं, सबकी वन्दनीय तथा पूजनीय, मंगलमयी, शुद्धिदायिनी, शुद्धिस्वरूपिणी, शोभनशीलवाली और शुभदायिनी हैं—ऐसी देवीकी मैं आराधना करता हूँ॥ ८९-९०॥

ध्यात्वानेनैव वरदां मूलेन पूजयेत्सुधीः।
दत्त्वा पाद्यादिकं देव्यै वेदोक्तेनैव नारद॥ ९१

ॐ श्रीं क्लीं ह्रीं दक्षिणायै स्वाहेति च विचक्षणः।
पूजयेद्विधिवद् भक्त्या दक्षिणां सर्वपूजिताम्॥ ९२

हे नारद! इस प्रकार ध्यान करके विद्वान् पुरुषको मूलमन्त्रसे इन वरदायिनी देवीकी पूजा करनी चाहिये। वेदोक्त मन्त्रके द्वारा देवी दक्षिणाको पाद्य आदि अर्पण करके '**ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं दक्षिणायै स्वाहा**'—इस मूल मन्त्रसे बुद्धिमान् व्यक्तिको सभी प्राणियोंद्वारा पूजित भगवती दक्षिणाकी भक्तिपूर्वक विधिवत् पूजा करनी चाहिये॥ ९१-९२॥

इत्येवं कथितं ब्रह्मन् दक्षिणाख्यानमेव च।
सुखदं प्रीतिदं चैव फलदं सर्वकर्मणाम्॥ ९३

हे ब्रह्मन्! इस प्रकार मैंने भगवती दक्षिणाका यह आख्यान आपसे कह दिया; यह सुख, प्रीति तथा सम्पूर्ण कर्मोंका फल प्रदान करनेवाला है॥ ९३॥

इदं च दक्षिणाख्यानं यः शृणोति समाहितः।
अङ्गहीनं च तत्कर्म न भवेद्धारते भुवि॥ ९४

अपुत्रो लभते पुत्रं निश्चितं च गुणान्वितम्।
भार्याहीनो लभेद्भार्यां सुशीलां सुन्दरीं पराम्॥ ९५

वरारोहां पुत्रवतीं विनीतां प्रियवादिनीम्।
पतिव्रतां च शुद्धां च कुलजां च वधूं वराम्॥ ९६

विद्याहीनो लभेद्विद्यां धनहीनो लभेद्धनम्।
भूमिहीनो लभेद्भूमिं प्रजाहीनो लभेत्प्रजाम्॥ ९७

सङ्कटे बन्धुविच्छेदे विपत्तौ बन्धने तथा।
मासमेकमिदं श्रुत्वा मुच्यते नात्र संशयः॥ ९८

पृथ्वीतलपर भारतवर्षमें जो मनुष्य सावधान होकर देवी दक्षिणाके इस आख्यानका श्रवण करता है, उसका कोई भी कार्य अपूर्ण नहीं रहता। पुत्रहीन व्यक्ति गुणी पुत्र तथा भार्याहीन पुरुष परम सुन्दर तथा सुशील पत्नी प्राप्त कर लेता है; साथ ही वह सुन्दर, पुत्रवती, विनम्र, प्रियभाषिणी, पतिव्रता, पवित्र तथा कुलीन श्रेष्ठ पुत्रवधू भी प्राप्त कर लेता है और विद्याहीन विद्या प्राप्त कर लेता है तथा धनहीन धन पा जाता है। भूमिहीन व्यक्तिको भूमि उपलब्ध हो जाती है और सन्तानहीन व्यक्ति सन्तान प्राप्त कर लेता है। संकट, बन्धुविच्छेद, विपत्ति तथा बन्धनकी स्थितिमें एक महीनेतक इस आख्यानका श्रवण करके मनुष्य इनसे मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है॥ ९४—९८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे दक्षिणोपाख्यानवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४५॥

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

भगवती षष्ठीकी महिमाके प्रसंगमें राजा प्रियव्रतकी कथा